



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मिताहार: हठयोग प्रदीपिका और अष्टांगहृदयम् का समन्वित अध्ययन

नेहा अग्रवाल¹, डॉ जन्मेजय²

¹शोधार्थी, योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय

²सहायक प्राध्यापक, योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय

सारांश :

मिताहार का अर्थ है ऐसा भोजन जो संयमित, सात्त्विक और संतुलित हो, जिससे शरीर स्वस्थ रहे, मन प्रसन्न और चित्त स्थिर बना रहे। न तो अधिक, न ही अत्यल्प ऐसा संतुलित और पचने योग्य आहार जो शरीर को हल्का, मन को स्थिर और प्राणों को सक्रिय बनाए। यह न केवल शारीरिक पोषण देता है, बल्कि आध्यात्मिक साधना का भी मूल आधार बनता है। योग परंपरा में यह माना गया है कि आहार का सीधा प्रभाव नाड़ियों की शुद्धता, जठराग्नि की तीव्रता और मानसिक स्थिरता पर पड़ता है। यदि साधक अत्यधिक या अपथ्य आहार ग्रहण करता है, तो उसके परिणामस्वरूप मन में अनिश्चय, आलस्य, तामसिक प्रवृत्ति और रोगों की उत्पत्ति होती है, जिससे साधना में विघ्न उत्पन्न होते हैं। इसीलिए मिताहार को केवल एक आहार पद्धति नहीं, बल्कि योगी का एक दैनिक अनुशासन माना गया है, जो उसे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में सहायता करता है। योगसाधना में मिताहार को उतना ही महत्व दिया गया है जितना किसी आसन या प्राणायाम को। मिताहार की महत्ता केवल हठयोग में ही नहीं, बल्कि समग्र भारतीय जीवनशैली और चिकित्सा पद्धतियों में भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी गई है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं जो व्यक्ति आहार-विहार, कर्म, निद्रा और जागरण में संतुलन रखता है, वही योग के माध्यम से अपने दुःखों का नाश कर सकता है। यद्यपि यह श्लोक भगवद्गीता से है, परंतु यही संतुलन की भावना हठयोग प्रदीपिका तथा अन्य योगग्रंथों में अंतर्निहित रूप से समाहित है। योग का मूल उद्देश्य शरीर, मन और प्राण में संतुलन लाना है, और यह संतुलन जीवनशैली के प्रत्येक आयाम में परिलक्षित होना चाहिए। मिताहार योग और आयुर्वेद दोनों परंपराओं का एक मौलिक सिद्धांत है, जो न केवल शारीरिक स्वास्थ्य बल्कि मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है। हठयोग प्रदीपिका में मिताहार को योगसाधना का अनिवार्य अंग बताते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि अत्यधिक भोजन (अत्याहार) साधना में बाधा उत्पन्न करता है, जबकि नियंत्रित और सात्त्विक आहार नाड़ियों की शुद्धि, प्राण के संतुलन और ध्यान में एकाग्रता के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर, अष्टांगहृदयम् में मिताहार को पथ्य-अपथ्य के संदर्भ में व्याख्यायित किया गया है, जहाँ आहार की मात्रा, सात्म्यता, देश-कालानुकूलता और सोपशम जैसे तत्वों पर बल दिया गया है। जो आहार उचित मात्रा में हो, शरीर की प्रकृति के अनुसार सात्म्य (अनुकूल) हो, देश और ऋतु के अनुसार हो तथा शांतचित्त होकर संयमपूर्वक ग्रहण किया गया हो वही आहार 'मिताहार' कहलाता है। इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जहाँ हठयोग प्रदीपिका साधक की आध्यात्मिक साधना को केंद्र में रखकर मिताहार की संकल्पना प्रस्तुत करती है, वहीं अष्टांगहृदयम् इसे रोग-निवारण, दोष-शमन और दीर्घायु के परिप्रेक्ष्य में समझाता है। दोनों ही परंपराएँ मानती हैं कि शुद्ध, सात्त्विक और संयमित आहार न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है, बल्कि प्राण और चित्त को भी संतुलित करता है। आधुनिक पोषण विज्ञान के 'पोर्शन कंट्रोल' और 'माइंडफुल ईटिंग' के सिद्धांत इन पारंपरिक अवधारणाओं की प्रासंगिकता को और पुष्ट करते हैं। इस प्रकार, मिताहार की यह अवधारणा योग और आयुर्वेद के समन्वित अध्ययन में स्वास्थ्य, साधना और समत्वपूर्ण जीवन के लिए एक सेतु के रूप में उभरती है। मिताहार केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि प्राण और चित्त की स्थिरता हेतु भी आवश्यक है।

कुंजीशब्द – मिताहार, हठयोग प्रदीपिका, अष्टांगहृदयम्, योग, आयुर्वेद, पथ्य-अपथ्य, सात्त्विक आहार

परिचय

भारतीय परंपरा में आहार को 'प्राण का आधार' कहा गया है। उपनिषद् से लेकर हठयोग और आयुर्वेदिक ग्रंथों तक, सभी में भोजन के चयन, मात्रा और पद्धति पर विशेष बल दिया गया है। हठयोग जहाँ इसे 'योग-साधना के लिए अनिवार्य अनुशासन' मानता है, वहीं आयुर्वेद इसे 'रोग-निवारण और स्वास्थ्य-संवर्धन' का आधार मानता है। आधुनिक चिकित्सा भी अब 'आहार एवं जीवनशैली' में परिवर्तन को स्वास्थ्य की कुंजी मान रही है।

मिताहार – हठयोग दृष्टि से :

ब्रह्मचर्य पालन करने वाला, मिताहार (संयमित और पवित्र भोजन) स्वीकारने वाला, त्यागी और योग में लीन व्यक्ति यदि वह यह सब अपनाता है, तो एक वर्ष में सिद्ध योगी बन सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। मन को शांति देने वाला, स्वादिष्ट, घी-युक्त भोजन जिसमें पेट का एक-चौथाई हिस्सा रिक्त रखा जाए ऐसा खाना जब शिव की आराधना भाव से ग्रहण किया जाए, तो वह मिताहार कहलाता है। अपथ्य, जैसे तीखा, अम्ल, अत्यधिक नमकीन, कड़वा, कफ-हरित सब्जियाँ, शराब, मांस, प्याज, लहसुन, आदि। ये सभी खाद्य पदार्थ साधक के लिए अनुपयुक्त माने गए हैं क्योंकि ये चित्त और शरीर में अशांति, दोष, तथा रोग उत्थान का कारण बनते हैं। फिर से गर्म किया गया भोजन, रूखा भोजन, अत्यधिक नमकीन या खट्टा खाना, तथा अत्यधिक मसालेदार सब्जियाँ ये सभी अहितकर माने गए हैं। साधक को अग्निबल (भट्टी, चूल्हा), स्त्री समाज, अनियंत्रित यात्राएं, सुबह कड़ाके की ठंड में स्नान, उपवास और सभी प्रकार के अत्यधिक शारीरिक या मानसिक व्यायाम से बचना चाहिए। हठयोग की साधना में आहार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट रूप से लिखा है :

‘मिताहारं विनियंति योगी भूत्वा फलाहारमपि संयतः स्यात्’ ॥

अर्थात् योगी को मिताहार ग्रहण करना चाहिए जिसमें फलाहार भी संयमित हो। ऐसा आहार शरीर में भारीपन न लाए, अपच न करे और साधना में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करे। हठयोग परंपरा में मिताहार केवल भोजन की मात्रा तक सीमित नहीं, बल्कि उसके प्रकार, समय और मनोदशा तक को समाहित करता है। मिताहार के चार मुख्य तत्व होते हैं :

- मात्रा – ऐसा कहा गया है कि पेट का आधा भाग भोजन से, चौथाई भाग जल से और शेष चौथाई भाग वायु के लिए रिक्त छोड़ देना चाहिए। यह पाचन की प्रक्रिया को सहज बनाता है।
- प्रकार – आहार हल्का, सात्विक, स्वच्छ और मौन भाव से ग्रहण किया जाना चाहिए। योगी के आहार में अधिक मिर्च-मसाले, गरिष्ठ, बासी या तामसिक भोजन का स्थान नहीं होता।
- समय – भोजन नियमित समय पर किया जाना चाहिए, विशेषकर दिन के प्रमुख समय में। रात्रि का भोजन हल्का और शीघ्र पचने वाला होना चाहिए, ताकि साधना और निद्रा दोनों में बाधा न आए।
- प्रभाव – मिताहार शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, चित्त को शांत करता है और प्राण के प्रवाह को मुक्त करता है। इससे आसन, प्राणायाम और ध्यान की सिद्धि में सहायता मिलती है।

इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि हठयोग में आहार केवल एक भौतिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह साधना की गहराई से जुड़ा हुआ एक आध्यात्मिक अनुशासन है। मिताहार ही वह आधार है जो साधक के शरीर, मन और प्राण को संतुलित रखते हुए उसे उच्च साधनात्मक अवस्थाओं तक ले जाने में सहायक होता है।

अन्य ग्रंथों में मिताहार :

1. भगवद्गीता : जो व्यक्ति आहार, विहार, कर्म, नींद और जागरण में संतुलित है, वही सच्चे योग का अनुभव करता है। गीता मिताहार को मानसिक संतुलन और दुःख-नाश का कारण मानती है।
2. गरुड पुराण : भगवान विष्णु उसी योगी को देखते हैं जो संयमित आहार, संयमित इंद्रिय और शांतचित्त वाला हो।

मिताहार : आयुर्वेदिक दृष्टि से :

मिताहार की महत्ता केवल हठयोग में ही नहीं, बल्कि समग्र भारतीय जीवनशैली और चिकित्सा पद्धतियों में भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी गई है। अष्टांगहृदयम्, जो आयुर्वेद का एक प्रमुख ग्रंथ है, उसमें भी मिताहार की विस्तृत रूप में व्याख्या की गई है। जो आहार उचित मात्रा में हो, शरीर की प्रकृति के अनुसार सात्म्य (अनुकूल) हो, देश और ऋतु के अनुसार हो तथा शांतचित्त होकर संयमपूर्वक ग्रहण किया गया हो वही आहार मिताहार कहलाता है। यह परिभाषा न केवल शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि मानसिक और प्राणिक संतुलन के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

अष्टांगहृदयम् के अनुसार मिताहार के चार आधार को स्वस्थ जीवन का मूल स्तंभ माना गया है। अष्टांगहृदयम् के सूत्रस्थान में इसका वर्णन करते हुए चार प्रमुख आधार बताए गए हैं, जिन पर मिताहार आधारित होना चाहिए।

- पहला आधार है मात्रा अर्थात् भोजन न तो अधिक मात्रा में होना चाहिए, न ही अत्यल्प। इसे शरीर की जठराग्नि यानी पाचन शक्ति के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। अधिक भोजन से अम (अपच) उत्पन्न होता है और अल्प भोजन से शरीर को पोषण नहीं मिलता।
- दूसरा आधार है सात्म्यता, जिसका तात्पर्य है भोजन का शरीर की प्रकृति वात, पित्त, कफ के अनुरूप और पचने योग्य होना। जो पदार्थ किसी व्यक्ति के लिए अनुकूल हों, वही उसके लिए सात्म्य कहे जाते हैं। एक ही भोजन सभी के लिए उपयोगी नहीं होता, इसलिए व्यक्ति विशेष की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर आहार का चयन आवश्यक है।
- तीसरा आधार है देश-काल, अर्थात् आहार का चयन स्थान, ऋतु और समय के अनुसार होना चाहिए। जैसे वर्षा ऋतु में भारी और तैलीय पदार्थों से परहेज, ग्रीष्म में शीतल और पित्त-शामक आहार, तथा शरद ऋतु में मधुर और शीतल प्रकृति के पदार्थ उपयुक्त माने जाते हैं।
- चौथा और अंतिम आधार है सोपशम, जिसका अर्थ है शांतचित्त होकर, ध्यानपूर्वक और बिना क्रोध, चिंता या विक्षेप के भोजन करना। ऐसा आहार मानसिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होता है।

इस प्रकार, अष्टांगहृदयम् में मिताहार को केवल एक भोजन विधि न मानकर, सम्पूर्ण जीवनशैली और मानसिक स्थिति के साथ जोड़ा गया है। जब आहार इन चारों मापदंडों पर खरा उतरता है।

इस प्रकार देखा जाए तो योग और आयुर्वेद, दोनों ही पथों पर मिताहार एक मूलभूत स्तंभ के रूप में विद्यमान है। एक ओर जहाँ हठयोग साधना में मिताहार को मानसिक स्थिरता और साधनात्मक उन्नति का माध्यम माना गया है, वहीं आयुर्वेद में इसे शरीर के दोषों को संतुलित रखने, अग्नि को प्रदीप्त करने और रोगों से रक्षा करने का आधार बताया गया है। संतुलित आहार ही सम्यक जीवन का आधार बनता है यही योग और आयुर्वेद का सम्मिलित संदेश है।

हठयोग, आयुर्वेद, दर्शन और मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य से मिताहार का विप्लेषण

हठयोग प्रदीपिका (1.57-63) में यह स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्मचर्य, मिताहार और त्याग साधना के अनिवार्य अंग हैं। विशेष रूप से मिताहार को साधक के शारीरिक और मानसिक संतुलन की प्राप्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है (स्वात्माराम, 15वीं शताब्दी/2002)। अष्टांगहृदयम् (सू. 8.13-15) में आहार को मात्रा, सात्म्यता, देश-काल और सोपशम के आधार पर मिताहार की संज्ञा दी गई है, जिससे यह सिद्ध होता है कि आहार केवल पोषण का साधन न होकर जीवन की समग्र संतुलनकारी शक्ति है (वाग्भट, लगभग 7वीं शताब्दी/1999)। इसी प्रकार चरक संहिता (सू. 1.64) में पथ्य (सात्विक एवं उपयुक्त आहार) को औषधि से भी अधिक प्रभावी माना गया है, क्योंकि उचित आहार शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और स्वास्थ्य की रक्षा करता है (चरक, लगभग 100 ई.पू./2000)। इन तीनों ग्रंथों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिताहार न केवल योगिक साधना का अंग है, बल्कि आयुर्वेदिक चिकित्सा और दर्शन में भी स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति का आधार माना गया है।

योग और आयुर्वेद के सिद्धांतों में आहार को केवल शरीर की भूख मिटाने का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि यह शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि का भी एक सशक्त साधन है। दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो 'यथान्नं भुज्यते तेन यथा भावो भवेत्तथा' अर्थात् जैसा अन्न खाया जाता है, वैसा ही व्यक्ति का स्वभाव और मानसिक भाव बनता है। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि आहार हमारे विचारों और आचरण को आकार देता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यही सत्य सामने आता है। जो कुछ हम ग्रहण करते हैं, वह शरीर में ऊर्जा में रूपांतरित होता है। यदि आहार भारी, रजसिक या तामसिक प्रकृति का हो जैसे अधिक तला-भुना, मांसाहार, बासी या अत्यधिक तीखा भोजन तो यह चित्त में अस्थिरता, चंचलता और विकारों को जन्म देता है। इसका

प्रभाव साधना पर पड़ता है ध्यान में एकाग्रता नहीं बनती, प्राणायाम बाधित होता है, और चित्त तरंगित हो जाता है।

इसके विपरीत, सात्त्विक और मिताहार जिसमें ताजे फल, हरी सब्जियां, हल्का अनाज, शुद्ध जल और संयमित मात्रा का भोजन हो वह न केवल शरीर को ऊर्जावान और हल्का बनाता है, बल्कि मन को स्थिर, शांत और ध्यान के योग्य भी बनाता है। योगदर्शन के अनुसार, चित्तवृत्तियों का निरोध तभी संभव है जब शरीर शुद्ध, आहार सात्त्विक और मन शांत हो।

इस प्रकार, दर्शन और मनोविज्ञान दोनों यह पुष्टि करते हैं कि मिताहार साधना का मूलाधार है यह आत्मानुशासन, विवेक और आंतरिक स्थिरता की ओर ले जाने वाला एक अत्यंत आवश्यक साधन है।

समकालीन चिकित्सा और पोषण विज्ञान का समर्थन :

हठयोग में वर्णित मिताहार का सिद्धांत आज के समय में न केवल योगिक साधना के लिए प्रासंगिक है, बल्कि समकालीन चिकित्सा और पोषण विज्ञान भी इसे वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित करता है। आधुनिक पोषण विज्ञान मात्रा नियंत्रण और संतुलित आहार को एक स्वस्थ जीवनशैली की आधारशिला मानता है। अनुपातिक उपवास और सजग भोजन जैसे आज के लोकप्रिय पोषण संबंधी सिद्धांत वस्तुतः योग के मिताहार सिद्धांत से प्रेरणा पाते हैं। इन आधुनिक विचारों का उद्देश्य भी शरीर की आंतरिक लय के अनुरूप भोजन करना, पाचन अग्नि को उचित समय देना, और चित्त को व्यर्थ की क्रियाओं से विरत रखना है।

मिताहार का उद्देश्य केवल 'क्या खाएं' तक सीमित नहीं है, बल्कि 'कैसे खाएं, कितना खाएं, और किस भाव से खाएं' इन सभी आयामों को समाहित करता है। यह दृष्टिकोण पूरी तरह से योग के 'चित्तवृत्ति निरोध' के लक्ष्य से जुड़ा है। यदि भोजन असंयमित हो, तो चित्त में तामसिक और रजसिक वृत्तियाँ जागृत होती हैं, जिससे ध्यान, प्राणायाम और अन्य साधनाओं में सफलता प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

शोध पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक और पाठ्य विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। हठयोग प्रदीपिका और अष्टांगहृदयम् के श्लोकों का विश्लेषण कर योग और आयुर्वेद के दृष्टिकोण की तुलना की गई। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों का भी संदर्भ लिया गया, जिससे मिताहार का शारीरिक आरोग्य, मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति के प्रभावों की पुष्टि हो सके।

निष्कर्ष

हठयोग प्रदीपिका के इन श्लोकों से यह स्पष्ट होता है कि मिताहार, योगमार्ग पर चलने वाले साधक के लिए केवल एक पोषण संबंधी अनुशासन नहीं है, बल्कि यह उसकी साधना, मानसिक स्थिति और ऊर्जा प्रवाह का मूल स्तंभ है। यही कारण है कि मिताहार को योग-सिद्धि की आवश्यक शर्त माना गया है। यदि कोई व्यक्ति आहार में मितव्ययी नहीं है, तो चाहे वह कितनी भी उन्नत आसन-प्राणायाम क्यों न करे, उसे चित्त की स्थिरता और समाधि की स्थिति प्राप्त करना कठिन होगा।

अतः योग के मार्ग में, मिताहार न केवल एक दैहिक अनुशासन है, बल्कि यह साधना की बुनियाद है, जो शरीर को शुद्ध, प्राण को मुक्त और चित्त को स्थिर करता है। हठयोग का यह अद्भुत सूत्र आज के युग में भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना प्राचीन भारत में था। मिताहार केवल आहार का संयम नहीं, बल्कि एक समग्र जीवनशैली है। हठयोग प्रदीपिका और अष्टांगहृदयम् दोनों ही इसे 'योग और स्वास्थ्य साधना का आधार' मानते हैं। आधुनिक पोषण विज्ञान ने भी इस दृष्टिकोण की पुष्टि की है। इस प्रकार मिताहार का अभ्यास शारीरिक आरोग्य, मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति तीनों के लिए अनिवार्य है।

संदर्भ

- चरक. (2014). चरक संहिता. चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।
- स्वामी मुक्तिबोधानंद. (1998). हठयोग प्रदीपिकारू हठयोग पर प्रकाश. बिहार स्कूल ऑफ योग।
- स्वात्माराम. (2015). हठयोग प्रदीपिका. चौखंबा प्रकाशन।
- वाग्भट. (2010). अष्टांगहृदयम् चौखंबा प्रकाशन।
- Dr. Ravi Verma, Dr. Rohit Singh, Dr. Nitin Urmaliya, Dr. Radha Gupta, Dr. Priti Hardeniya. (2025) Ayurvedic And Modern View of Viruddha Aahar (Incompatible Food). International Journal of Contemporary Research in Multidisciplinary.
- Suman, Neeraj Kumar Joshi, Mansi, Jyoti. (2025) Review article on the importance of Aahar w.s.r. to Kritann Kalpana in prevention of diseases. J Ayurveda Integr Med Sc

- Raman Kaushik (2025) A comprehensive review of Ayurveda Aahar: Regulations, challenges, and future prospects

